झारखण्ड की क्षेत्रीय भाषाएँ और हिन्दी

डॉ. जिन्दर सिंह मुण्डा

सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

सार संक्षेप

झारखण्ड एक बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक जातीय विविधता वाला राज्य है। 15 नवम्बर 2000 को बिहार से इसका अलग किया जाना भाषायी संदर्भ ही है। यहाँ नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया एवं कुरमाली क्षेत्रीय भाषाएँ हैं जो भारोपीय भाषा परिवार से आती हैं। क्षेत्रीय भाषा का अर्थ किसी क्षेत्र विशेष का है जिसे हम जनपदीय भाषा भी कह सकते हैं। भाषाओं का निर्माण और विकास कभी भी धर्म के आधार पर नहीं हुआ। भाषा का संबंध जातीयता से है। अस्मिता में सभी भाषायी अस्मिता समान हैं।

विशेष शब्द – बहुभाषिकता, बहुसांस्कृतिक, जातीयता, अस्मिता, वर्चस्ववाद।

झारखण्ड में बोली जानेवाली तीन भाषा परिवारों में भारोपीय भाषा परिवार सबसे बड़ा है। अगर विश्व के परिप्रेक्ष्य में भी देखें तो यह परिवार सबसे समृद्ध है। इसे आर्य परिवार के रूप में भी संबोधित किया जाता रहा है। झारखण्ड में इस परिवार के अंतर्गत हिन्दी के अलावे नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया एवं कुरमाली भाषाएँ आती हैं। क्षेत्रीय भाषा का अर्थ किसी क्षेत्र विशेष की है, जिसे हम लोकभाषा, जनभाषा, जनपदीय भाषा एवं जातीय भाषा के रूप में भी देख सकते हैं। विश्व की तमाम भाषाएँ किसी न किसी लोकभाषा/क्षेत्रीय भाषा से विकसित हुई हैं। झारखण्ड एक बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक जातीय विविधता वाला राज्य है। 15 नवम्बर, 2000 को बिहार से अलग किया जाना भी भाषाई संदर्भ ही है।

भाषा की स्थिति का वर्तमान दौर बड़ा ही निराभाजक है। सूचना तकनीक के वर्चस्व ने आज चंद भाषाओं का ही दबदबा बढ़ा है। जिसके नतीजे में क्षेत्रीय भाषाएँ लगातार दम घुट रही है। लोकभाषाएँ और जनभाषाएँ निरंतर मरती जा रही हैं। बड़े पैमाने पर विस्थापन, गरीबी, भुखमरी, नक्सलवाद, पूँजीवाद एवं असहयोगी भावना के साथ सौतेलेपन का दर्द झेल रहे हमारे गाँव–गाँव की बोलियाँ खत्म हो रही है। आगे भविष्य में उसी तरह भाषाओं और बोलियों के खत्म होने से मानव जीवन की महत्त्वपूर्ण कड़ियां विलुप्त हो जायेंगी। सुरीले गीत और धुनें, खेती की विधियाँ,

पशु–पक्षियों की बोली समझने की कला, देशज ज्ञान, खगोल–विज्ञान, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ और जीवन चर्चा की तमाम वैज्ञानिक जानकारियाँ। अगर हम अतीत में झाँककर देखें तो इतिहास में जो भाषाएँ नष्ट हुई उनके अवशेष जहाँ–तहाँ पड़े शिलालेखों को अभी तक कोई नही पढ़ सका। कोई नही जानता कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में मिले अवशेषों में कौन सी भाषा थी। भविष्य में हिन्दी को बचाने/बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम उसकी उपभाषाओं, राज्य की जनपदीय/क्षेत्रीय/मातृभाषा/बोलियों को बचाना/ बढ़ाना होगा। वास्तव में इनकी प्रगति ही हिन्दी की प्रगति सन्निहित है। हिन्दी की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि उसके पास जनपदीय भाषाओं का अपार भंडार है, जिसका प्रयोग करके वह समावेशी रचनात्मक और जीवंत हो सकती है। डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार–''अपनी भाषा, जाति, प्रदेश, उसकी संस्कृति पर गर्व करना बुरी बात नहीं है। इन अनेक जातियों से ही भारत राष्ट्र की रचना हुई। इन प्रदेशों की विभिन्न संस्कृतियों से मिलकर ही भारतीय संस्कृति का निर्माण होता है। इसलिए अपने प्रदेश और उसकी संस्कृति को भुलाकर राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति की बात करना सम्भव नहीं है।''[1]

किसी भी प्रदेश की भाषा समस्या एक राष्ट्रीय समस्या है। भाषा का प्रारंभिक रूप बोली है; जिसे विकसित होकर बोली–उपभाषा और भाषा का रूप ग्रहण करती है। हमारे मौलिक विचार मातृभाषा में आते हैं। भाषा–समस्या एक गंभीर समस्या है। यह जितना बाह्य रूप में है आंतरिक दृष्टि से भी कम नहीं है। चूँकि भाषा का संबंध कई प्रकार की भावुकता, जनपादिक मोह और पूर्वाग्रहों से जुड़ा है, इसलिए बहुभाषी राज्यों एवं देशों में भाषा की समस्या प्रायः संकुल और उलझी रहती है। किन्तु मनुष्य समस्याओं का समाधान करने वाला प्राणी होने के कारण भाषा–समस्या का भी कोई न कोई समाधान अपने देश और समाज के लिए कर ही लेता है। रूस, स्विटजरलैंड आदि अनेक देशों ने अपनी उलझी हुई भाषा समस्या का समाधान बहुत ही खूबी के साथ कर लिया है। भारत की जातियों में हिन्दी भाषी–जाति संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी है। परंतु क्षेत्रीय भाषाओं के मध्य एक उलझन सी पैदा हो गई है। झारखण्ड में क्षेत्रीय भाषाओं की एक विशाल परंपरा रही है जो, हिन्दी की उपभाग के रूप में जानी जाती है। नागपुरी, खोरठा, कुरमाली एवं पंचपरगनिया आदि हिन्दी की बोलियाँ नहीं है, वरन् वे हिन्दी से स्वतंत्र भाषाएँ हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भाषा और बोलियों की यह समस्या हिन्दी–भाषी जाति के विकास की समस्या बन जाती है। ऐसे कहने को तो इस वृहत्तर हिन्दी पट्टी के अंतर्गत कई जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा–भाषी क्षेत्र भी आते हैं। किंतु जैसे आज अवधी, ब्रज, खड़ीबोली, भोजपुरी, प्रभृत बोलियाँ हिन्दी भाषा के अंतर्गत रहते हुए भी अपनी थोड़ी–सी अलग पहचान

लिए हुए है। यही बात झारखण्ड के क्षेत्रीय भाषाओं के साथ भी लागू होती है।

पूंजीवादी व्यवस्था में जातीय भाषाओं के गठन और प्रसार से दो भाषा सम्बधी निष्कर्ष निकलते हैं–पहला यह कि जो भाषाएँ या बोलियाँ जातीय भाषाओं के रूप में विकसित होकर सामने आती हैं वे पूँजीवाद के अभ्युदय से पहले की होती है। आर्थिक व्यवस्था बदलने से एकदम नयी भाषाओं का जन्म नहीं होता, इसलिए स्तालिन की स्थापना सही है कि ''भाषाएँ आर्थिक व्यवस्था का सांस्कृतिक प्रतिबिंब नही है।''[2]

जातीयता का प्रमुख चिन्ह है–भाषा। जाति के निर्माण से भाषा के गठन और विकास का घनिष्ठ संबंध है। दिल्ली के आस–पास के प्रदेश की भाषा क्यों हमारी जातीय भाषा बन गयी? कुछ लोग इसके लिए विशुद्ध भाषागत कारण ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं। खड़ी बोली में कुछ ऐसे गुण थे जो ब्रज, अवधी आदि में नहीं थे। इसलिए उसने ब्रजभाषा को अपदस्थ कर दिया। इसके विरुद्ध ब्रजभाषा प्रेमी यह तर्क देते हैं कि ब्रजभाषा के कवि खड़ी बोली में पैदा ही नहीं हुए। खड़ी बोली ने, ब्रजभाषा का हक छीन लिया है, यह घोर अत्याचार है।

''व्यापार के आधार पर बाजार के अंतर्गत जितना भी इलाका आ जाए, वह सभी जातीय प्रदेश बने, यह आवश्यक नही। स्वाभाविक क्रिया यह है कि जो लघुजातियाँ भाषा, संस्कृति, इतिहास आदि की दृष्टि से एक–दूसरे के बहुत निकट हैं वे मिलकर एक महाजाति का निर्माण करें।''[3]

हमारे संविधान में स्वीकृत जो भी भाषाएँ हैं, उनकी, सांस्कृतिक महिमा अपरंपार है। सिंधी, पंजाबी और उर्दू अन्य ऐसी भाषाएँ हैं जिनकी ख्याति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी उल्लेखनीय है। किंतु एक राष्ट्र को उसकी अस्मिता के पहचान के लिए एक ऐसी भाषा की जरूरत होती है जो देश के लिए संपर्क की भाषा बने और राष्ट्रभाषा के रूप में आसीन इस दृष्टि से संविधान स्वीकृत भाषाओं के बीच हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात आती है। रामविलास शर्मा की यह उक्ति जो समालोचक में छपी थी–''यदि हिन्दी–भाषी जनता संगठित हों यदि वह अपने प्रदेश में हिन्दी को पूर्ण रूप से राजकाज की भाषा बनाये तो यह असंभव है कि यह विशाल प्रदेश और बहुसंख्यक जनता सारे देश को अपने साथ खींचकर न ले चल सके।''[4] यदि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजों को ढोने के ब्यामोह में पड़े रहेंगे तो यह अंग्रेजों के भाषायी उपनिवेशवाद को स्वीकार करने जैसा होगा। अभी विश्व में अनेक ऐसे देश हैं जिन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है, किन्तु उनकी भाषिक परतंत्रता आद्यपर्यंत बनी हुई है और वे मुख्यतः अंग्रेजों के भाषायी उपनिवेशवाद की बेड़ियों से मुक्त नहीं हो सके हैं। ''भारत का भविष्य यहाँ की निन्यानबे फीसदी जनता पर निर्भर

नहीं है। भविष्य निर्भर है डेढ़ फीसदी अंग्रेजी जानने वालों पर; जो इस खिड़की से आधुनिक संसार की ओर झाँकते हैं। इन डेढ़ फीसदी में भी बहुतों को खिड़की तक पहुंचने और बाहर झाँकने का सौभाग्य नही मिलता।''[5] भारत एवं झारखण्ड में भी अनेक भाषा समस्याएँ ऐसी है जिनका सम्बंध ऐतिहासिक भाषा विज्ञान से है। आर्य भाषा परिवार, ऑस्ट्रिक परिवार एवं द्रविड़ परिवार ये अलग–अलग भाषा परिवार निरपेक्षतः अलग जनसमुदायों के भाषा परिवार हैं या अपने उद्भव काल से ही सम्बद्ध रहे हैं। यह समाजशास्त्र और भाषा विज्ञान दोनों का महत्वपूर्ण प्रश्न है। ''हमारे देश में साम्राज्यवादी प्रभुत्व और सामंती अवशेषों के कारण जातीय निर्माण की प्रक्रिया अवरूद्ध रही है। इसलिए यहाँ इस तरह के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं कि ब्रज या बुन्देलखण्ड की भाषा किसी स्वतंत्र जाति की भाषा है या हिन्दी भाषा की बोली।''[6]

हिन्दी प्रदेश में जो साहित्य रचा गया है, वह चाहे ब्रजभाषा हो, चाहे अवधी, चाहे खड़ीबोली हिन्दी में हो। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि उसका प्रसार किसी एक क्षेत्र/जनपद तक सीमित न रहा। हिन्दी द्वेषी–भाषी–विज्ञानी इस प्रयत्न में हैं कि हिन्दी की सारी साहित्यिक विरासत से हिन्दी जनता को वंचित कर दिया जाय, फिर हिन्दी भाषा के क्षेत्र को स्वतंत्र जनपदों में बाँटकर उसके जातीय अस्तित्व को छिन्न–भिन्न कर दिया जाय।

हिन्दी नव जागरण में सामाजिक–सांस्कृतिक और भाषायी विविधताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। निज भाषा के नाम पर सिर्फ खड़ी बोली हिन्दी पर जोर दिया गया। हिन्दी भाषी क्षेत्र हो या गैर हिन्दी भाषी क्षेत्र वहाँ बोली जाने वाली अन्य भाषाओं एवं बोलियों के साहित्य को विमर्श का अंग नहीं बनाया गया। साथ ही उनकी उपेक्षा भी हुई। झारखण्ड के क्षेत्रीय भाषाओं में नागपुरी सहित खोरठा, पंचपरगनिया एवं कुरमाली भाषा की एक विकसित परंपरा है परन्तु आज भी ये बोलियाँ अपना ठौर तलाशते मजबूर हैं। क्षेत्रीय भाषा अथवा लोक भाषा की उपेक्षा का अर्थ है भारतीय प्राचीन गौरवमय संस्कृति की अनदेखी करना। खासकर झारखण्ड जैसे राज्यों के लिए जहाँ सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा की मिसाल है। इन्हें नजरअंदाज करना मानव के खतरे से कम नही है। हिन्दी नवजागरण पर बांग्ला नवजागरण का असर साफ नजर आता है। उन्होंने दलितों, वंचितों, अल्पसंख्यकों को सम्बोधित नहीं किया, उसके केन्द्र में सवर्ण थे। बांग्ला नवजागरण में दलित लेखक गायब हैं। हिन्दी नवजागरण में भी दलित और अल्पसंल्पकों का लेखन नदारद है। उर्दू के प्रति बेगानापन है। अलीगढ़ आंदोलन के बारे में बेरुखी है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में पूँजीवाद का असमान विकास हुआ है। भाषायी अस्मिता एक अवस्था के बाद बिखरनी आरंभ हो जाती है। उसे सत्तातंत्र, बाजार, विज्ञापन, प्रलोभन, प्रमोशन आदि के आधार पर टिकाऊ नहीं बनाया जा सकता।

भाषायी अस्मिता का मॉडल वर्चस्ववादी मॉडल है। इसके आधार पर राष्ट्र–राज्य का निर्माण संभव है लेकिन यह मॉडल टिकाऊ नहीं है। इस मॉडल में भाषायी समानता का अभाव है। पूँजीवाद, अपने स्वाभाविक विकास–क्रम में भाषायी वैषम्य को हवा देता है और यह काम मीडिया, विज्ञापन, सम्पर्क भाषा, राजभाषा आदि के जरिए करता है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में खड़ी बोली को लेकर जो प्रतिवादी स्वर सुनाई दे रहे हैं वे इस धारणा की पुष्टि करते हैं। यह सांस्कृतिक वर्चस्व का नया रूप है। यह सांस्कृतिक असमानता को वैद्यता प्रदान करता है। जातीयता में वर्चस्व बना रहता है। वर्चस्व खत्म हो इसके लिए जरूरी है कि सभी भाषाओं और बोलियों के समान विकास की बात की जाए। हिन्दी में अवधी, ब्रज और खड़ीबोली का साहित्य ही इतिहास का अंग है? झारखण्ड क्षेत्र की जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों का साहित्य इसमें शामिल क्यों नहीं है? जहाँ तक इतिहास की बात है तो जितना पुराना हिन्दी का इतिहास है, उतने कम नागपुरी तथा अन्य झारखण्डी भाषाओं का भी नही है। वरन् काफी पुरानी परम्परा रही है जो मुख्यतः वाचिक रही है। भाषायी अस्मिता एवं समानता के लिए जरूरी है कि प्रत्येक भाषा और साहित्य का अपना स्वतंत्र इतिहास हो, उनके विकास की स्वतन्त्र और स्वायत संरचनाएँ निर्मित की जाए। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जातीयता के आधार पर प्रशासनिक संरचनाएँ न बनायी जाय। मसलन जातीयता के आधार पर राज्यों का गठन अब स्वयं में दिक्कतें खड़ी कर रहा है। जातीयता के आधार के बजाय उदार–व्यावहारिक–प्रशासनिक राज्य संरचनाएँ विकसित हो जाए। भाषायी विकास की समान समझ के आधार पर हिन्दी भाषी क्षेत्र की बोलियों और भाषाओं के विकास की ओर राज्य और केन्द्र सरकार ने ध्यान ही नहीं दिया। यहाँ तक कि लेखक, संगठनों और निजी तौर पर लेखकों ने भी कोई बयान नहीं दिया। ''देश की विभिन्न जातियाँ आपस में मित्रता बरतने के बदले एक–दूसरे से बैर मानने लगती है, एक–दूसरे से सीखने के बदले अपने बड़प्पन की डींग हांकने में सारा समय लगा देती है। जहाँ तक साहित्य का सम्बन्ध है, यहाँ की जातियाँ एक–दूसरे से सहयोग करके ही उसे संवारती रही हैं और आगे भी उसे सँवार सकती हैं। सूर और तुलसी के युग में यहाँ के सांस्कृतिक आंदोलन बराबर एक प्रदेश के बाहर के लोगों को भी प्रभावित करते रहे हैं। यदि वे व्यापक आंदोलन न होते तो न सूर के पद रचे जाते, न चण्डीदास के।''[7] अस्मिता के आधार पर नागपुरी, खोरठा, कुरमाली एवं पंचपरगनिया जैसी भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं को हमने कभी नहीं देखा। ''जातीय समस्या और भाषा समस्या में बड़ा गहरा सम्बंध है, किसी जाति के सामाजिक विकास तथा उस विकास के सांस्कृतिक प्रतिबिंब में गहरा सम्बन्ध है। यह सांस्कृतिक प्रतिबिंब सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है।''[8]

हिन्दी–उर्दू के लेखकों के लिए 'प्रलेस' बनाए गए। लेकिन इन भाषाओं के लेखकों और उनके साहित्य के ख्यालों को लेखक संगठनों में कभी नही उठाया गया। इससे पता चलता है कि लेखकों के मन में राजनीतिक आग्रहों के कारण हिन्दी–उर्दू के सवाल बहस तलब रहे। ''भाषाओं का निर्माण और विकास धर्म के आधार पर नहीं हुआ। धार्मिक विचारधाराओं के कारण उनके लिखने–बोलने–वालों ने उनमें कुछ नई विशेषताएँ पैदा की हो, वह दूसरी बात है। भाषा का सम्बन्ध जातीयता से है, किसी जाति के सामजिक और सांस्कृतिक विकास से है। जाति और धर्म एक वस्तु नहीं है।''[9]

यदि नवजागरण के पैमाने में भाषा और उसके साहित्य को देखेंगे तो एक भाषा प्रमुख होगी, बाकि, हाशिए पर रहेंगी। सवाल यह भी है कि नवजागरण के जिन पैमानों को खड़ीबाली हिन्दी में लागू किया जाता है, वे पैमाने हिन्दी भाषी क्षेत्र की अन्य भाषाओं पर लागू क्यों नहीं किए गए? जबकि अस्मिता के पैमाने समान रूप से सभी भाषाओं और बोलियों पर लागू किए जा सकते हैं। मसलन अस्मिता में सभी भाषायी अस्मिताएँ समान हैं चाहे उनके बोलने वालों की संख्या कम हो या ज्यादा। सभी भाषाओं और बोलियों का साहित्य समान है। इसमें प्राथमिक और गौण, केन्द्र और हाशिए की धारणा लागू नहीं की जा सकती। अस्मिता के आधार पर सभी भाषाओं को समान मानकर मूल्यांकन करेंगे तो एक ही क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं के बीच के भेद, विकास की प्रक्रिया में भेद, भाषायी संरचना में भेद और आम नागरिकों के संस्कार और आदतों में भेद सामने आयेंगे। यह धारणा टूटेगी कि हिन्दी भाषी एक जैसे होते हैं। जिस तरह भाषा अस्मिता का अंग है, वैसे ही धर्म और जाति भी अस्मिता का अंग है। साम्प्रदायिकता, उपभोक्तावाद, फंडामेटालिज्म, पुनरूत्थानवाद, युद्ध और पृथक्कतावाद भी अस्मिता का अंग है। इनमें कौन सी अस्मिता कब प्रमुखता अर्जित कर लेगी कहना कठिन ही नहीं असंभव है।

संदर्भ

1. शर्मा रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ0–138
2. शर्मा रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ0–258
3. वही, पृ0–282
4. शर्मा रामविलास, समालोचक (प0) मई, 2019, पृ0–58
5. शर्मा रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ0–148
6. शर्मा रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ0–50
7. शर्मा रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ0–100
8. वही, पृ0–66
9. वही, पृ0–132